देखना, अवलोकन करना, सुनना – ये सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। अगर आप अपने छोटे से कोने से झांक कर देख रहे हैं तो आपका देखना नहीं हो पाएगा, विश्व में क्या हो रहा है आप नहीं देख पाएंगे : निराशा, दुश्चिंता, कराहता अकेलापन; मांओं, पत्नियों, प्रेमियों और जो मारे जा चुके हैं उनके आंसुओं को आप नहीं देख पाएंगे। लेकिन आपको यह सब देखना पड़ेगा, बिना भावुक हुए...

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद
दिसंबर 2008
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया का त्रैमासिक हिंदी पत्र
मार्च, जून, सितंबर एवं दिसंबर में प्रकाशित
वार्षिक शुल्कः रु. 100.00 आजीवन शुल्कः रु. 1000.00
संपादक : कृष्णनाथ
सहसंपादक : मुकेश

इस अंक मे :

देखने की कला 3
इच्छा क्या है? 18

देखने की कला

देखना, अवलोकन करना कितना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, हम उस दिन यह बात कर रहे थे। यह एक ऐसी कला है जिस पर आपको अत्यधिक ध्यान देना होगा। हमारा देखना आधा-अधूरा होता है, पूरे तौर पर, पूरे मन व हृदय से हम कुछ भी नहीं देखते। जब तक हम इस असाधारण कला को नहीं सीखते मुझे ऐसा लगता है कि हम मन के एक बहुत ही छोटे दायरे में, मस्तिष्क के एक बहुत ही छोटे से हिस्से में ज़िंदगी जीते हैं।

तमाम वजहों से हम किसी भी चीज़ को पूरेपन के साथ नहीं देखते; या तो हम अपनी ही समस्याओं से घिरे होते हैं, या अपने विश्वासों, अपनी परंपराओं, अपने अतीत से इतने ज्यादा संस्कारबद्ध और बोझिल रहते हैं कि हमारा देखना-सुनना वास्तव में हो ही नहीं पाता। कभी हम किसी वृक्ष को नहीं देख पाते, उसे देखते भी हैं तो अपने मन में समायी उस वृक्ष की छवि और धारणा के साथ। लेकिन धारणा, जानकारी और अनुभव का उस वास्तविक वृक्ष से कोई लेना-देना नहीं होता। सौभाग्य से हम यहां इतने सारे वृक्षों से घिरे हैं। आप अगर अपने चारों ओर देखें, जैसा कि यह वक्ता कर रहा है, अगर आप सचमुच इन वृक्षों की ओर देखें तो आपको पता चलेगा कि इस तरह इनको देखना कि बीच में कोई छवि, कोई आड़, कोई आवरण न आने पाये कितना ज्यादा कठिन है।

आपसे गुजारिश है, मेरी तरफ न देखते रहें बल्कि ऐसा करें, उन वृक्षों की ओर देखें और पता लगाएं कि आप संपूर्णता से उनको देख सकते हैं कि नहीं। संपूर्णता से मेरा मतलब है कि मन और हृदय के समूचेपन से, उसके किसी छोटे से हिस्से से नहीं। क्योंकि आज शाम जो हम करने जा

रहे हैं उसके लिए इस तरह का अवलोकन, इस तरह का देखना बेहद ज़रूरी है। जब तक आप वास्तव में ऐसा नहीं कर पाते, बिना किसी सैद्धांतिकता, बौद्धिकता और ऐसी तमाम बेकार की चीज़ों में पड़े, मुझे नहीं लगता कि आज जो बात हम साथ-साथ करने जा रहे हैं उसे आप बारीकी से समझ पाएंगे।

दूसरा क्या कह रहा है न कभी हम यह देखते हैं और न सुनते हैं। हम या तो भावुक होते हैं या बहुत ही बौद्धिक – और यह हमें प्रकाश को, वृक्षों को, पक्षियों के रंगों को, उनकी ख़ूबसूरती को सचमुच देखने से रोक देता है, उन कौवों को सुनने से रोक देता है। इनमें से किसी के भी साथ हमारा सीधा रिश्ता नहीं है। और मुझे इस बात में भी काफी संदेह है कि हमारा किसी के भी साथ कोई सीधा रिश्ता-नाता है, यहां तक कि हमारे अपने ही विचारों, धारणाओं, उद्देश्यों एवं अपने ही ऊपर पड़ रहे प्रभावों के साथ भी। हमारा जो भी देखना है, यहां तक कि खुद को देखना भी, हमेशा छवियों, प्रतिमाओं के ज़रिये हुआ करता है।

इसलिए यह समझना बेहद ज़रूरी है कि देखने की क्रिया ही एकमात्र सत्य है; और कुछ नहीं। यदि मुझे किसी वृक्ष को, पक्षी को या किसी सुंदर चेहरे को या किसी बच्चे की मुस्कान को देखना आता है तो यही सब कुछ है, मुझे और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन किसी पक्षी या पत्ती को देखना, पक्षियों के कलरव को सुनना उन छवियों के चलते लगभग नामुमकिन हो जाता है जो हमने न केवल प्रकृति के बारे में बल्कि अपने बारे में भी बना रखी होती हैं। ये छवियां सच में हमें देखने और महसूस करने से रोकती हैं। यहां महसूस करने का अर्थ भावुकता और भावनाओं से बिलकुल अलग है।

जैसा कि हमने कहा हम हर चीज़ को खंडित करके देखते हैं तथा बचपन से ही हमें एक आंशिक दायरे में देखना, निरीक्षण करना, सीखना या जीना सिखाया जाता है; जबकि मन का एक विशाल क्षेत्र अछूता ही रह जाता है, उसको हम जान ही नहीं पाते। वह मन अत्यंत विस्तृत, निस्सीम है, और हम उसे कभी स्पर्श नहीं करते, उसके गुणधर्म या स्वभाव को कभी जान ही नहीं पाते क्योंकि हम कुछ भी पूरी तरह से, समूचे मन और हृदय से, अपनी सारी की सारी शिराओं, रोओं-रोओं से, अपनी पूरी की पूरी आंखों से न देखते हैं और न सुनते हैं। हमारे लिए शब्दों और धारणाओं की सबसे ज्यादा अहमियत है न कि देखने और करने की। लेकिन धारणा के रहते - जो कि एक विश्वास, एक मत है - हम न वास्तव में देख पाते हैं, न कर्म कर पाते हैं। और तब हमारे सामने क्या करें और क्या न करें की समस्या आ खड़ी होती है, कर्म और धारणा के बीच का द्वंद्व आ खड़ा होता है।

कृपया वक्ता के शब्दों को ही न सुनते रहें बल्कि वह जो कह रहा है उसका अपने भीतर निरीक्षण करें, वक्ता को एक आईना बनाते हुए खुद को उसमें देखें। वक्ता को जो कहना है उसका उतना महत्त्व नहीं है, और खुद वक्ता का कोई महत्त्व नहीं है, लेकिन अपना निरीक्षण करते हुए आप जो कुछ सीखते, ग्रहण करते हैं, उसी का महत्त्व है। ऐसा इसलिए कि हमारे दिलो-दिमाग में, हमारे जीने के तौर-तरीकों में, हमारी भावनाओं और हमारे दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में एक समग्र क्रांति, एक संपूर्ण परिवर्तन बेहद ज़रूरी है। और ऐसा मूलभूत, गहरा परिवर्तन लाना तभी संभव है जब हमें यह पता हो कि देखा कैसे जाता है। क्योंकि जब आप सच में देख रहे होते हैं तो वह देखना महज आंखों के ज़रिये नहीं होता बल्कि उसमें आपका पूरा मन-मस्तिष्क शामिल होता है।

पता नहीं आपमें से किसी ने कभी कार चलाई है या नहीं; जब आप कार चला रहे होते हैं तो आप न केवल सामने से आ रही कार को आंख से देख रहे होते हैं बल्कि आपका मस्तिष्क दूर सड़क के मोड़ का, किनारे की सड़क का तथा आती-जाती दूसरी गाड़ियों का भी निरीक्षण कर रहा होता है। इस प्रकार का देखना सिर्फ आंखों और आपकी तंत्रिकाओं के ज़रिये नहीं होता बल्कि आपके पूरे हृदय और मस्तिष्क से होता है; और आप इस ढंग से पूरी तरह तब तक नहीं देख सकते हैं जब तक आप समूचे मस्तिष्क के एक छोटे से हिस्से में ही जिये चले जाते हैं, उसी में काम और सोच-विचार किये जाते हैं।

देखिए पूरे विश्व में क्या हो रहा है : जिस समाज और संस्कृति में हम रह रहे हैं उसके द्वारा हम संस्कारबद्ध हो रहे हैं। और उस संस्कृति को मनुष्य ने बनाया है, तथा उसमें कुछ भी पवित्र, अलौकिक या शाश्वत नहीं है। संस्कृति, समाज, पुस्तकें, रेडियो, जो कुछ भी हम सुनते-देखते हैं, वे तमाम प्रभाव जो हम पर पड़ते हैं जिनके बारे में हमें पता होता है या नहीं होता – वे सभी हमें मन के विशाल क्षेत्र के एक छोटे से दायरे में ही जीने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। आप स्कूल, कॉलेज जाते हैं, जीविका के लिए कोई तकनीक सीख लेते हैं; और बाकी के चालीस या पचास साल अपना जीवन, अपना समय, अपनी ऊर्जा उस छोटे से ख़ास दायरे में खर्च कर देते हैं। जबकि मन का एक विस्तीर्ण क्षेत्र है। जब तक हम इस विखंडन में, इस आंशिकता में बुनियादी परिवर्तन नहीं ले आते कोई क्रांति संभव ही नहीं है। हां, कुछ आर्थिक, सामाजिक और तथाकथित सांस्कृतिक फेरबदल भले हो जाएं लेकिन मानव की पीड़ा का अंत नहीं होगा, उसके दुख, संताप, निराशा का अंत नहीं होगा, उसके द्वंद्वों और युद्धों का अंत नहीं होगा।

पता नहीं आपने कुछ दिन पहले ऐसी ख़बर पढ़ी थी या नहीं कि सोवियत आर्मी के एक मार्शल ने पोलित ब्यूरो को बताया कि अब वे सैनिकों को सम्मोहन के ज़रिये ट्रेनिंग दे रहे हैं। इसका मतलब जानते हैं आप? आपको सम्मोहन में रखकर यह सिखाया जाता है कि दूसरे को मारा कैसे जाए, आदेशों का चुपचाप पालन कैसे किया जाए, पूरी स्वाधीनता से लेकिन एक ढांचे के अंदर, अपने ऊपर के अधिकारी के मातहत कैसे काम किया जाए। संस्कृति और समाज आज हममें से हरएक के साथ बिलकुल यही तो कर रहे हैं। संस्कृति और समाज ने आपको सम्मोहित कर रखा है।

कृपया इसे बहुत ध्यान से सुनें क्योंकि ऐसा केवल सोवियत आर्मी में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में हो रहा है। जब आप गीता या कुरान को या किसी मंत्र को लगातार दोहराते हैं तो आप वही तो कर रहे होते हैं। जैसे ही आप कहते हैं कि मैं हिंदू हूं, या बौद्ध हूं, या मुस्लिम, या कैथलिक, तो आप उसी एक पैटर्न को दोहरा रहे होते हैं, सम्मोहित हो चुके होते हैं। टेक्नोलॉजी भी यही कर रही है।

आप चाहे कोई चतुर वकील हों, या प्रथम श्रेणी के इंजीनियर, या आर्टिस्ट, या कोई महान वैज्ञानिक, लेकिन आप हमेशा संपूर्ण के एक छोटे से हिस्से में ही काम कर रहे होते हैं। पता नहीं आप इसे देख पा रहे हैं या नहीं, इसलिए नहीं कि मैं इसे समझा रहा हूं, बल्कि क्या आप इसे सचमुच देख पा रहे हैं?

कम्युनिस्ट ऐसा कर रहे हैं, पूंजीवादी यही कर रहे हैं, हर कोई, माता-पिता, स्कूल, शिक्षा, ये सभी एक ढांचे में, एक दायरे में काम करने के लिए मन को तैयार कर रहे हैं। और हम सदा उसी ढांचे के अंदर, उसी दायरे में परिवर्तन लाने की कोशिश कर रहे हैं।

तो हमें इसका एहसास कैसे हो, विचार के तौर पर नहीं बल्कि सचमुच – आप समझ रहे हैं न? यानी, क्या हम वास्तविकता को देख सकते हैं? वास्तविकता के मायने कि जो कुछ रोज़ाना हो रहा है, अख़बारों में जिसकी चर्चा हो रही है, राजनेता जिसकी बात कर रहे हैं, संस्कृति और परंपरा जिसकी बात कर रहे हैं, परिवारों में जिसकी चर्चा है, जिसके चलते आप खुद को हिंदुस्तानी या कुछ और मानते हैं। जब आप यह देखेंगे तो आप अपने ऊपर सवाल ज़रूर करेंगे। मुझे यकीन है कि आप ऐसा ज़रूर करेंगे अगर आप इसे देख लेते हैं तो।

इसलिए यह समझना निहायत ज़रूरी है कि आप कैसे देखते हैं। अगर आप सचमुच देखते हैं तो सवाल होगा : कैसे पूरा का पूरा मन कार्य करने लगे? मेरा मतलब न तो खंडित व संस्कारबद्ध मन से है, न ही शिक्षित व परिष्कृत मन से जो कि भयभीत रहता है, जो कहता है : ईश्वर है या ईश्वर नहीं है, यह मेरा परिवार है, यह आपका परिवार है, यह मेरा राष्ट्र है और यह आपका राष्ट्र। तब आप पूछेंगे, ''मन की ऐसी समग्रता कैसे आए, कैसे वह संपूर्णता में कार्य कर सके, उस समय भी जब वह कोई तकनीक सीख रहा हो?'' हालांकि उसे इस बेतरतीब समाज में दूसरों के साथ संबंधित होकर रहना है और कोई काम भी सीखना है, यह सब ध्यान में रखते हुए एक बुनियादी सवाल यह उठता है कि कैसे सारे मन को संवेदनशील बनाया जाए ताकि उसका वह अंश भी संवेदनशील बना रहे।'' पता नहीं आप मेरा प्रश्न समझ पा रहे हैं या नहीं। हम इसे और ढंग से लेते हैं।

फिलहाल तो हम संवेदनशील नहीं हैं। हम कुछ-कुछ स्थलों पर संवेदनशील हैं; हम तब संवेदनशील होते हैं जब हमारे व्यक्तित्व के किसी ख़ास हिस्से पर, हमारी किसी व्यक्तिगत बात पर, या हमारे सुखों पर चोट पहुंचती है –

तब लड़ाई शुरू होती है। तो हम कुछ जगहों पर, आंशिक तौर पर संवेदनशील हैं, पूर्ण रूप से संवेदनशील बिलकुल नहीं हैं। अतः प्रश्न यह है कि हम कैसे उस अंश को भी जो कि पूर्ण का हिस्सा है और जिसे दिन पर दिन दोहराते-दोहराते थका हुआ, मंद व नीरस बना दिया गया है, संपूर्ण मन के साथ-साथ उसको भी कैसे संवेदनशील बनाया जाए?'' क्या यह सवाल पूरी तरह साफ हो पाया? ज़रूर बताएं।

शायद यह प्रश्न आपके लिए नया है। शायद आपने अपने से कभी ऐसा सवाल नहीं पूछा है। क्योंकि हम सभी जितनी कम से कम परेशानी और झंझट हो उस तरह जी लेने से संतुष्ट रहते हैं - जो हमारा जीवन है उसके एक छोटे से हिस्से में रमे हुए, और उस छोटे से हिस्से की अद्‌भुत संस्कृति का गुणगान बाकी की पश्चिमी, प्राचीन आदि संस्कृतियों की तुलना में करते हुए।

एक अति विशाल क्षेत्र के एक अत्यंत छोटे से कोने में रहने के क्या मायने हैं इसका एहसास तक हमें नहीं होता। उस छोटे से दायरे की हमें कितनी गहरी चिंता है यह हम अपने आप से नहीं देख पाते, और उसी दायरे में, उसी छोटे से कोने में हम ज़िंदगी की समस्याओं का हल ढूंढ़ने की कोशिश किये जाते हैं। हम अपने आप से पूछ रहे हैं कि वह मन जो कि अभी इतने विशाल क्षेत्र में आधा सोया हुआ है - कारण कि हमारी सारी चिंता एक छोटे से दायरे को लेकर है - वह कैसे इस समग्रता के प्रति पूर्ण रूप से सजग हो, संवेदनशील हो?

अब पहली बात तो यह है कि इसका कोई तरीका नहीं है। क्योंकि कोई भी तरीका, कोई भी उपाय, कोई भी दोहराव या आदत, उस छोटे से दायरे का ही हिस्सा होगा। क्या हम साथ-साथ चल पा रहे हैं, साथ-साथ यात्रा कर पा रहे हैं, या आप पीछे छूटते जा रहे हैं? पहले तो हमें उस

दायरे की वास्तविकता को देखना होगा और उसकी क्या-क्या मांगें हैं यह भी देखना होगा। तब हम यह सवाल रख पाएंगे : ''कैसे हम इस समूचे क्षेत्र को पूर्ण रूप से संवेदनशील बनाएं?'' क्योंकि तभी सच्ची क्रांति संभव है।

पूरा का पूरा मन जब पूर्ण रूप से संवेदनशील होगा तब हम अलग ढंग से बर्ताव करेंगे, हमारा सोचना, महसूस करना, बिलकुल ही दूसरे आयाम का होगा। लेकिन इसकी कोई विधि नहीं है। यह मत कहिए कि मैं कैसे वहां तक पहुंचूं, कैसे संवेदनशील बनूं; आप किसी कॉलेज में जाकर, कोई किताब पढ़कर, कुछ अभ्यास कर के संवेदनशील नहीं बन सकते। यही सब तो आप अपने छोटे से दायरे में करते रहे हैं जिसने आपको अधिकाधिक संवेदनहीन बनाया है। इसे आप अपने दैनिक जीवन में देख सकते हैं जहां इतनी कठोरता, निर्दयता और हिंसकता है।

पता नहीं पत्र-पत्रिकाओं में आपने घायल अमेरिकी और वियतनामी सैनिकों की तस्वीरों को देखा है या नहीं। आप उनको देखकर कह देंगे, ''बहुत दुख हुआ'', लेकिन आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि यह घटना आपके साथ, या आपके परिवार के साथ, या आपके बेटे के साथ नहीं हुई है। तो हम कठोर इसलिए हो जाते हैं कि हम एक विकृत क्षेत्र के एक संकीर्ण, तंग कोने में ज़िदगी जीते हैं, काम करते हैं।

कृपया यह अच्छी तरह समझ लें कि इसका कोई तरीका नहीं है, कोई विधि नहीं है, क्योंकि जब आपकी यह समझ में आ जाता है तो समस्त अधिसत्ता, अथारिटी के असीम बोझ से, और इस प्रकार अतीत से, आप स्वतंत्र हो जाते हैं। पता नहीं आप इसे देख पा रहे हैं या नहीं।

हमारी संस्कृति में अतीत समाया हुआ है, यानी कि परंपरा, विश्वास, स्मृतियां और इनके प्रति निष्ठा, जिसे हम

इतना महान समझते हैं। और जैसे ही आपको इसका एहसास होगा कि इस संकीर्ण दायरे से मुक्त होने की कोई विधि, कोई प्रणाली नहीं है, इस सब को आप पूरी तरह से हमेशा के लिए एक तरफ कर देंगे। लेकिन आपको उस छोटे से दायरे के बारे में सब कुछ सीखना होगा। तब आप उस बोझ से मुक्त हो जाएंगे जो आपको संवेदनहीन बनाता है।

सैनिकों को मारना सिखाया जाता है, निर्दयतापूर्वक उन्हें दिन-ब-दिन कवायद करनी होती है, ताकि उनमें जरा भी मानवीय संवेदना बची न रह जाए। ऐसा ही कुछ पूरे संसार में हममें से हरेक के साथ हर रोज, हर समय, किया जा रहा है, अख़बारों के ज़रिये, राजनीतिज्ञों, गुरुओं, पादरियों और पोप के ज़रिये।

अब चूंकि कोई तरीका नहीं है, कोई विधि नहीं है तो व्यक्ति क्या करे? विधि का मतलब है अभ्यास, निर्भरता, मेरा तरीका और आपका तरीका, उसका मार्ग और मेरा मार्ग; मेरा गुरु जो थोड़ा ज्यादा जानता है; वह गुरु जो पाखंडी है और यह नहीं है - पर आप इस बात को शुरू से मान कर चलिए कि सारे के सारे गुरु पाखंडी होते हैं, चाहे वे तिब्बती लामा हों या कैथलिक या हिंदू - वे सारे के सारे दिखावटी हैं क्योंकि वे सभी उस क्षेत्र के एक बहुत ही छोटे से हिस्से में कार्य कर रहे हैं जो इतना घिस-पिट गया है, नष्ट-भ्रष्ट हो जा चुका है।

अब कोई क्या करे? मेरा प्रश्न समझे आप? समस्या ऐसी है : मन की गहराई और निस्सीमता का हमें पता नहीं है; आप इस बारे में किताबें पढ़ लें, आधुनिक मनोविज्ञानियों का अध्ययन कर लें, या प्राचीन गुरुओं का - उन पर भरोसा मत कीजिए, क्योंकि पता आपको खुद ही लगाना होगा, किसी और के हिसाब से नहीं।

हम इस मन को नहीं जानते हैं; इस मन के बारे में

आपको कुछ पता नहीं है इसलिए आप इसके बारे में कोई धारणा नहीं बना सकते हैं। आप समझ रहे हैं यहां जो कहा जा रहा है? आपके पास इसके बारे में कोई भी विचार, कोई भी मत या जानकारी नहीं हो सकती है। इस तरह आप किसी भी पूर्वकल्पना से, किसी भी धार्मिक मत से स्वतंत्र हैं।

फिर वही सवाल कि कोई क्या करे? हम बस इतना ही कर सकते हैं कि हम देखें। हम अपने उस संकीर्ण घेरे को देखें, अपने छोटे से घर को जिसे हमने उस निस्सीम आकाश के एक छोटे से कोने में बना लिया है और जिसमें हम आपस में लड़ रहे हैं, मारामारी कर रहे हैं, चीज़ों को सुधार आदि रहे हैं – आपको तो पता ही है वह सारा तमाशा – उसे बस देखें।

इसलिए यह समझना बेहद ज़रूरी है कि देखने का क्या अर्थ है क्योंकि जैसे ही कोई द्वंद्व आया कि आप उस खंडित कोने के, संकीर्ण घेरे के हिस्से बन गये। इसलिए हमें बिलकुल आरंभ से – नहीं, आरंभ से नहीं बल्कि अभी – सीखना होगा कि देखना क्या है। कल नहीं क्योंकि कल है ही नहीं – सुख की तलाश, भय या कष्ट के कारण ही 'कल' का आविष्कार कर लिया जाता है। मानसिक तौर पर वास्तव में कल होता ही नहीं है किंतु मस्तिष्क, यह मन, समय का आविष्कार कर लेता है। हम इस बारे में बाद में बात करेंगे।

इसलिए आप जो कर सकते हैं वह है देखना। अगर आप संवेदनशील नहीं हैं तो आप देख नहीं पाएंगे, और अगर आपके और देखी गयी वस्तु के बीच कोई छवि है तो आप संवेदनशील नहीं हैं। आप समझ रहे हैं न? अतः देखना प्रेम की क्रिया है। आपको पता है वह क्या है जो समूचे मन को संवेदनशील बनाता है? – एकमात्र प्रेम। कोई तकनीकी कौशल सीखते हुए भी आपमें प्रेम हो सकता है, लेकिन अगर

आपके पास केवल तकनीकी ज्ञान है और प्रेम नहीं है तो आप विश्व का विनाश करने जा रहे हैं। इसे अपने भीतर देखिए सर, अपने मन और हृदय में उतर कर देखिए, आप इसे खुद-ब-खुद देखेंगे।

देखना, अवलोकन करना, सुनना - ये सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। अगर आप अपने छोटे से कोने से झांक कर देख रहे हैं तो आपका देखना नहीं हो पाएगा, विश्व में क्या हो रहा है आप नहीं देख पाएंगे : निराशा, दुश्चिंता, कराहता अकेलापन; मांओं, पत्नियों, प्रेमियों और जो मारे जा चुके हैं उनके आंसुओं को आप नहीं देख पाएंगे। लेकिन आपको यह सब देखना पड़ेगा, बिना भावुक हुए, बिना यह कहे कि ''मैं तो युद्ध के ख़िलाफ हूं'', या ''मैं युद्ध का हिमायती हूं'', क्योंकि भावुकता सबसे विनाशकारी चीज़ों में से एक है, उसके चलते तथ्यों को भुला दिया जाता है, जो है को नज़रअंदाज कर दिया जाता है।

इसलिए देखना सबसे महत्त्वपूर्ण है। देखना ही समझ है; मन के ज़रिये, बुद्धि के ज़रिये, या किसी अंश के ज़रिये आप नहीं समझ सकते। मन जब पूरी तरह चुप होता है, जब कोई छवि नहीं होती, समझ केवल तभी संभव होती है।

देखना सारे अवरोधों को ध्वस्त कर देता है। देखिए सर, जब तक आपके और वृक्ष के बीच विभाजन है, मेरे और आपके बीच, आपके और पड़ोसी के बीच अलगाव है - अब वह पड़ोसी चाहे हज़ार मील दूर हो या आपके बगल में - तो द्वंद्व का होना तय है। अलगाव का मतलब ही है द्वंद्व; यह इतनी सीधी सी बात है।

हम द्वंद्व में ही जीते रहे हैं, द्वंद्व, संघर्ष और विभाजन के हम आदी हैं। भारत को आप एक इकाई के रूप में देखते हैं, भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक

इकाई के रूप में, और इसी प्रकार पूरे यूरोप को, अमेरिका और रूस को – अलग-अलग इकाइयों के तौर पर जिसमें हर इकाई दूसरी इकाई के ख़िलाफ है, और यह सारा विभाजन युद्ध तो पैदा करेगा ही।

इसके मायने यह नहीं है कि हम सभी को एक मत हो जाना है, या अगर मतभेद हैं तो मुझे लड़ाई करनी है – जब कोई चीज़ जैसी है उसको वैसा ही देख लिया जाता है तो फिर सहमति-असहमति का प्रश्न नहीं उठता। जो कुछ आप देखते हैं उसके बारे में जब आप कोई राय बना लेते हैं, सिर्फ तभी असहमति होती है, अलगाव होता है। जब मैं और आप यह देख लेते हैं कि यह चांद है तो कोई असहमति नहीं होती, वह चांद ही होता है। लेकिन अगर आपको यह कुछ और नज़र आए और मुझे कुछ और, तो अलगाव का होना और इस प्रकार द्वंद्व का होना तय है। अतः एक दरख़्त को जब आप सचमुच देख लेते हैं तो आपके और दरख़्त के बीच कोई फासला नहीं रह जाता, वहां कोई देखने वाला नहीं बचता।

हम लोग एक बहुत ही विद्वान चिकित्सक से बात कर रहे थे; एक मर्तबा उन्होंने एल.एस.डी. नामक मादक द्रव्य का अल्पमात्रा में सेवन किया था और तब उनके साथ टेप रकॉर्डर लिये दो चिकित्सक भी मौजूद थे। कुछ सेकेंड के बाद उन्होंने मेज पर रखे फूलों को देखते हुए पाया कि उनके और फूलों के बीच कोई स्पेस, कोई अंतराल नहीं रह गया था। इसका यह मतलब नहीं कि उन फूलों से वे एकाकार हो गये थे, बल्कि उनके बीच कोई फासला, कोई अवकाश नहीं रह गया था, जिसका अर्थ हुआ कि कोई द्रष्टा तब नहीं था।

हम यह नहीं कह रहे हैं कि आपको एल.एस.डी. लेनी चाहिए क्योंकि उसके अपने घातक प्रभाव होते हैं, और यह बात भी है कि जब आप ऐसी चीज़ें लेने लगते हैं तो

उनके गुलाम बन जाते हैं। पर एक बहुत ही सीधा, सरल और नैसर्गिक तरीका यह है कि आप स्वयं किसी वृक्ष को, फूल को, या चेहरे को देखें; इनमें से किसी का भी आप इस तरह अवलोकन करें कि आपके और उसके बीच कोई फासला न रहे। और इस तरह आप तभी देख पाते हैं जब प्रेम होता है – लेकिन इस शब्द का कितना दुरुपयोग हुआ है।

फिलहाल हम प्रेम के सवाल पर नहीं जाएंगे। लेकिन जब आप वास्तव में अवलोकन कर पाते हैं, सचमुच देख पाते हैं, तो उस देखने के साथ ही अद्‌भुत ढंग से समय और दूरी का अंत हो जाता है और ऐसा तब होता है जब प्रेम होता है। और बिना सौंदर्यबोध के आपमें प्रेम नहीं हो सकता। आप सौंदर्य के बारे में बातचीत भले कर लें, उसके बारे में लिख लें, कुछ आकृति बना लें, लेकिन अगर आपमें प्रेम नहीं है तो कुछ भी सुंदर नहीं है।

प्रेम से रहित होने का मतलब है कि आप पूर्ण रूप से संवेदनशील नहीं हैं। और चूंकि आप पूर्ण रूप से संवेदनशील नहीं हैं इसीलिए आप विकृत हो रहे हैं, भ्रष्ट हो रहे हैं। यह देश विकृत हो रहा है। ऐसा मत कहिए, ''क्या दूसरे देश पतन की ओर नहीं जा रहे?'' – वे जा रहे हैं, पर यह देखिए कि आप पतन की ओर जा रहे हैं, भले ही आप तकनीकी तौर पर शानदार इंजीनियर हों, बेजोड़ वकील हों, टेक्नीशियन हों, कम्प्यूटर चलाना जानते हों, पर सबके बावजूद आप विकृत हो रहे हैं क्योंकि जीने की समूची प्रक्रिया के प्रति आप संवेदनशील नहीं हैं।

हमारी मूल समस्या तब यह नहीं है कि युद्धों को कैसे रोकें, कौन सा भगवान दूसरे से अच्छा है, कौन सा राजनीतिक ढांचा या आर्थिक ढांचा बेहतर है, या कौन सा दल वोट देने लायक है – वे सारे के सारे धूर्त हैं – हमारी मूल समस्या यह

है कि मनुष्य चाहे अमेरिका में हो, हिंदुस्तान में या रूस में, वह उस संकीर्ण दायरे से मुक्त है कि नहीं।

और वह संकीर्ण दायरा हम ही हैं, आपका छोटा सा घटिया दिमाग ही है। हमने ही उस दायरे को बनाया है, क्योंकि हमारे अपने छोटे-छोटे दिमाग बंटे हुए हैं, खंड-खंड हैं और इस कारण समग्र के प्रति संवेदनशील होने में असमर्थ हैं; हम उस छोटे से हिस्से को महफूज, शांत, तसल्ली और सुख देने वाला बनाना चाहते हैं ताकि हर दुख-कष्ट से बचा जा सके, क्योंकि बुनियादी तौर पर हम सुख की ही तलाश में हैं। और अगर आपने सुख की, अपने सुख की, जांच-पड़ताल, छानबीन की है, उसका निरीक्षण किया है, तो आप देखेंगे कि जहां-जहां सुख है वहां दुख ज़रूर है। एक के होने पर आप दूसरे से बच नहीं सकते हैं; इसके बावजूद आप हमेशा और ज्यादा सुख की मांग करते हैं और इस तरह और ज्यादा दुख को बुलावा देते हैं। और इसी ज़मीन पर हमने उस चीज़ का निर्माण कर लिया है जिसे हम मानव जीवन कहते हैं। देखने का अर्थ है इसके अंतरतम संपर्क में होना, और आप इसके गहन, वास्तविक संपर्क में तब तक नहीं हो सकते जब तक आपने धारणाएं, विश्वास, मत और सिद्धांत बनाए हुए हैं।

तो जो महत्त्वपूर्ण है वह है देखना और सुनना, न कि सीखना। पक्षियों को सुनिये, अपनी पत्नी की आवाज़ को सुनिये चाहे वह कितनी ही मधुर, कर्कश या बेसब्र हो, और आप अपनी आवाज़ को भी सुनिये चाहे वह कितनी ही अच्छी, बुरी या अधीर हो। इस सुनने में ही आपको एहसास हो जाएगा कि द्रष्टा और दृश्य के बीच का सारा विभाजन ख़त्म हो गया है। इसलिए कोई संघर्ष नहीं है, कोई द्वंद्व नहीं है, और आप इतनी सावधानी के साथ अवलोकन कर रहे हैं कि वह अवलोकन ही अनुशासन है; आप अनुशासन आरोपित नहीं कर रहे हैं। और यही सौंदर्य है, श्रीमान, यदि आप इसे

महसूस कर सकें, यही देखने का सौंदर्य है।

यदि आप देख पाते हैं तो आपको कुछ और करने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि उस देखने में ही सारा अनुशासन है, सारा सदाचार है, जो कि पूरी तरह ध्यान देना है। उस देखने में समस्त सौंदर्य है, और उस सौंदर्य के संग-साथ है प्रेम। जब प्रेम है तो आपको कुछ और करने की आवश्यकता नहीं है। तब आप जहां हैं वहीं स्वर्ग है; और उसके साथ ही समस्त खोज का अवसान हो है।

मद्रास, 3 जनवरी 1968 *द अवेकनिंग ऑफ इंटैलिजेंस*

भाग पांच, अध्याय एक

अनुवाद : मुकेश

इच्छा क्या है?

प्रश्न : क्या मानव में इच्छा का होना बुनियादी बात है? इच्छा के बिना क्या हम इस संसार में कुछ भी कर पाएंगे?

कृष्णमूर्ति : क्या इस बारे में हम बात करें? इस बारे में बातचीत करें कि इच्छा क्या है, वह क्यों हमारी ज़िंदगी में इतनी अहम हो गयी है, इतनी हावी हो गयी है और अपने विषय साल-दर-साल बदलती जाती है? ठीक? आप समझ रहे हैं? क्यों? और संसार के सारे साधु-संन्यासी जिन्हें गंभीर, समर्पित, ज़िम्मेदार माना जाता है, क्यों अपनी इच्छाओं का दमन करते हैं और अपनी इच्छाओं से ही प्रताड़ित रहते हैं? वे किसी भी प्रतीक, चिन्ह या व्यक्ति की पूजा कर रहे हों पर इच्छा की अग्नि उनके भीतर सुलगती रहती है। यह सीधी सी बात है। इच्छा के पूरे स्वरूप को समझने के लिए हमें इसके भीतर बड़ी ही सावधानी से उतरना होगा। आइये साथ मिलकर इस बारे में बातचीत करें? कृपया मेरे साथ शामिल होइये।

इच्छा के आगे मानव ऐसा बेबस, असहाय क्यों है? एक तरफ ऐसे मानव हैं जो इच्छा की हर बात को मान लेना ठीक समझते हैं और दूसरी तरफ वे जो इच्छा का दमन करना चाहते हैं। आप समझ रहे हैं? भारत के साधु-संन्यासी और बौद्ध भिक्षु, वे सारे-के-सारे कह रहे हैं कि आपको अपनी इच्छाओं को अपने वश में करना है, या अपनी इच्छा को ईश्वर में लीन कर लेना है। ये सारी बातें आप समझ रहे हैं? अपनी इच्छा को आप अपने मुक्तिदाता की पूजा-आराधना की तरफ मोड़ लें, अपनी इच्छाओं को जो इतनी बलवती हैं दबा दें, उनके ख़िलाफ संकल्प लें - ब्रह्मचर्य का संकल्प, मौनव्रत, दिन में एक बार खाना आदि। आप समझे?

क्या आप कभी किसी मठ में रहे हैं? नहीं? एक बार मैं एक मठ में ठहरा था, सिर्फ मनोरंजन के लिए! मैं वहां रहा, सब कुछ देखा, सुना, वे जो कुछ भी कर रहे थे वह किया। सच में वह ख़ौफनाक था। मौन रहने का संकल्प लेना और फिर कभी न बोलना – इस सबके मायने समझते हैं? किसी भी स्त्री की तरफ न देखना। इसका क्या मतलब है आप समझ रहे हैं? न कभी आकाश की ओर देखना, न कभी वृक्षों के सौंदर्य की ओर, न कभी मैदान में खड़े किसी अकेले दरख़्त को निहारना, आप क्या महसूस करते हैं इसको कभी दूसरे से न बांटना। यह सब आप समझ रहे हैं?

प्रार्थना, धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर, प्रकाश पाने के लिए, संबोधि के लिए, स्वर्ग या कुछ और की तलाश में, मनुष्य ने खुद को न जाने कितनी यंत्रणाएं दी हैं। यह सारा मामला कितना भयावह है। और इस सबकी जड़ में इच्छा है, कामना है। ठीक है? पता नहीं आपकी समझ में कुछ आ भी रहा है या नहीं।

भारत में, पश्चिम में, सुदूर पूरब में, लोगों ने इस आग को दबाने की भरसक कोशिश की है। एक बार मैं एक अत्यधिक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी से मिला, वह विदेश में रह चुका था, खूब बढ़िया अंग्रेजी बोल लेता था, काफी विद्वान था। फिर भी उसने संकल्प लिया हुआ था कि उसे किसी शादीशुदा के घर में प्रवेश नहीं करना है। आपको हंसी आ रही है। क्योंकि उसका मानना था कि सेक्स घ्रणास्पद है और जब वह यह बोल रहा था तो महसूस किया जा सकता था कि वह कितनी घोर यंत्रणाओं से गुजरा है। आप समझ रहे हैं न? यह सब आपके लिए कुछ मायने रखता है?

तो, इच्छा क्या है इस सवाल में हमें जाना है। हमारे जीवन के ये दो छोर क्यों हैं, एक तरफ दमन, नियंत्रण और दूसरी तरफ जो मर्जी हो वह करना? ऐसे गुरु भी हैं जो

कहते हैं आपकी जो इच्छा हो करिये, ईश्वर का आशीर्वाद सदा आपके साथ है। और निश्चय ही वे बेहद लोकप्रिय हैं। हजारों लोग उनके पास जाते हैं और अपना सबकुछ दान कर आते हैं। आपको पता ही है कि दुनियाभर में यह हो रहा है। तो हमें इस प्रश्न में जाना होगा कि इच्छा क्या है और क्या यह ज़िंदगी की बुनियादी मांग है। क्या यहां तक बात कुछ साफ हो पायी?

तो आइये इसकी छानबीन करें। क्या है इच्छा? आप समझ रहे हैं? हमने यहां इच्छा के दायरे को काफी विस्तृत कर दिया है, संसार में क्या हो रहा है, नाइट क्लब, सेक्स, फ्री-सेक्स, आप जो करना चाहें करें, गुरु आपकी मदद करेंगे, यह सब सचमुच आपको कुंठाओं से मुक्त कर देता है। इन्हें 'काउंटर ग्रुप' कहा जाता है, आपको पता होगा। हे ईश्वर, कितना बेहूदा संसार है यह!

मैं गलत भी हो सकता हूं पर ऐसा लगता है कि वे यह सवाल कभी नहीं पूछते कि इच्छा की प्रकृति क्या है। वह क्या चीज़ है जो इच्छा को चलाती है? आप समझ रहे हैं? कुछ पाने, कुछ हासिल करने की मांग, और साथ ही वह सत्ता जो कहती है कि मांग नहीं करनी चाहिए। एक इच्छा के ख़िलाफ दूसरी इच्छा की लड़ाई चलती रहती है। ठीक है? क्या हम इस बात पर सहमत हैं?

हम लोग यहां बातचीत कर रहे हैं, मैं आपको कोई उपदेश नहीं दे रहा हूं। हम लोग साथ-साथ संवाद कर रहे हैं कि मानव में यह दोहरी, एक-दूसरे के विपरीत चलने वाली धाराएं क्यों हैं, जैसे चाहना और न चाहना, दमन करना या फिर सब कुछ खुला छोड़ देना? मेरा सवाल आप समझ रहे हैं? हमारे भीतर यह अंतर्विरोध क्यों है? क्या यह दुविधा इसलिए है कि हम तथ्यों का सामना नहीं करना चाहते? पता नहीं आपकी समझ में यह बात आ रही है कि नहीं। मैं गुस्से

में हूं। यह तथ्य है। मैं हिंसक हूं। मैं ईर्ष्यालु हूं, लोभी हूं। यह सच्चाई है। लेकिन जब मैं कहता हूं कि मैं हिंसक हूं तो तुरंत यह विचार आ जाता है कि मुझे हिंसक नहीं होना चाहिए। ठीक है न? और हिंसक न होना यानी अहिंसा एक आदर्श बन जाता है।

तो हिंसा, जो कि मैं हूं, और अहिंसक होने की कोशिश के बीच संघर्ष चलता रहता है। हम ऐसा क्यों करते हैं? अ-हिंसा तो तथ्य नहीं है। मुझे मालूम है यह एक फैशन हो गया है जिसे तोलस्तोय से लेकर हिंदुस्तान लाया गया, यानी कि हम सभी को अहिंसक बनना चाहिए जबकि तथ्य यह है कि हम वास्तव में हिंसक हैं। आप इसे स्वीकार करेंगे? तो फिर इसके विपरीत को क्यों लाया जाए? आप समझ रहे हैं? क्या यह तथ्य से भागना नहीं है? अगर यह तथ्य से भागना है तो हम ऐसा क्यों कर रहे हैं? क्या इसलिए कि हमें मालूम ही नहीं कि तथ्य का कैसे सामना किया जाए? मैं किसी चीज़ से तभी भागता हूं जब मुझे पता नहीं होता कि उसके साथ क्या करना है, और यदि मुझे पता हो कि क्या करना है तो मैं उससे निपट सकता हूं।

तो आइये पता लगाएं। ओह इसमें तो बड़ा वक्त लग जाएगा! लेकिन मैं इसकी तहकीकात करूंगा। किसी तथ्य से कैसे पेश आया जाए, न कि उसके विपरीत से, आइये पता लगाएं। मैं हिंसक हूं। और मैं इसका विपरीत खड़ा नहीं कर रहा। क्योंकि वह विपरीत तथ्य नहीं होगा, उसकी कोई अहमियत नहीं होगी। जिस बात की अहमियत है, जो सच है, जो हकीकत है वह यह है कि मैं हिंसक हूं। ठीक? और हिंसा के क्या मायने हैं? न केवल दूसरे को नुकसान पहुंचाना, जैसे बम फेंक देना आदि जो विश्व में हो रहा है, बल्कि तुलना करना भी। ठीक? जब मैं खुद को आपसे तौलता हूं, कि आप तेज हैं, बुद्धिमान हैं, या महान हैं, तब यह तुलना

मुझे कहां ले जाती है? तब मैं खुद को बुझा हुआ, मंद बना लेता हूं। ठीक है? पता नहीं आपकी कुछ समझ में आ रहा है या नहीं? क्या यह आपके लिए कुछ भारी पड़ रहा है?

हम क्यों नाप-जोख करते हैं? यह सही है कि अगर आपके पास पैसा है, और आपको कार पसंद करनी है या कोई ड्रैस चुननी है तो आपको नाप-जोख करनी पड़ेगी। लेकिन अंदरूनी तौर पर, मानसिक रूप से मैं किसी से अपनी तुलना क्यों करता हूं? क्या इसलिए कि मुझे नहीं मालूम कि मुझे अपने साथ क्या करना है? आप बात को समझ रहे हैं?

जब आप किसी बच्चे से कहते हैं कि देखो तुम्हें अपने बड़े भाई जैसा बनना है, जो कि ज्यादातर मां-बाप करते हैं, तब उस बच्चे के साथ क्या गुजरती है? क्या कभी आपने सोचा है? मेरे दो बेटे हैं, या दो बेटियां हैं। मैं सबसे छोटे की तुलना बड़े बेटे से करता हूं, और कहता हूं, ''तुम्हें उसके जैसा बनना है।'' इस बर्ताव का उस पर क्या असर पड़ता है? आप समझ रहे हैं? जब मैं 'अ' से कहता हूं कि तुम्हें 'ब' जैसा बनना है तो 'अ' के साथ क्या होता है? तब वह 'ब' की नकल करने लगता है। आप एक ढर्रा बना देते हैं और यह तुलना हिंसा ही तो है। ठीक है न? आप यह देख पा रहे हैं? नहीं? नकल करना हिंसा नहीं तो क्या है? इस सबकी बारीकी में आपको जाना होगा तभी आप यह समझ पाएंगे।

जब आप हिंसा को ध्यान से देखते हैं तो वह परत-दर-परत अपने को उघाड़ती है, उस शब्द में क्या-क्या छुपा है, और ऐसी न जाने कितनी आश्चर्यजनक चीज़ें सामने आती हैं। लेकिन जब आप अहिंसा के पीछे भागते हैं, जो कि एक भ्रामक चीज़ है, तथ्य का जिससे कोई लेना-देना नहीं है, तो उसका कोई मायने नहीं होता। पता नहीं आप यह देख पा रहे हैं या नहीं?

आइये उस बात पर हम फिर लौटते हैं : हिंसा को आप कैसे ध्यान से देखेंगे? क्या देखने वाला उस चीज़ से अलग है जिसे हिंसा कहा जा रहा है? आप समझे? मैं हिंसक हूं। वह शब्द अपने साथ एक प्रतिक्रिया लाता है। उस ख़ास प्रतिक्रिया को पहचानने के लिए मैंने उस शब्द का बार-बार इस्तेमाल किया है। आप समझ रहे हैं? बार-बार उस शब्द को दोहराकर मैं उस भाव को मज़बूत करता जाता हूं। तो क्या मैं उस शब्द से स्वतंत्र होकर अवलोकन कर सकता हूं? यह बात आप समझ रहे हैं? नहीं, आप नहीं समझ रहे। आइये दोबारा इसे लेते हैं।

क्या है इच्छा? कैसे वह पैदा होती है? और उसे कैसे समझा जाए, उसके साथ इस तरह कैसे जिया जाए कि न कोई दमन हो, न उसकी निंदा हो और न उसमें बहा जाए? ठीक? इसको हम ध्यानपूर्वक देखें और समझें क्योंकि जब कोई चीज़ साफ-साफ समझ ली जाती है तो आसान हो जाती है। कार के कलपुर्जों को खोलना अगर मुझे आता है – यह मैं कर चुका हूं, आधुनिक कारों के साथ नहीं जो कि बहुत जटिल हैं – तो कार की किसी भी ख़राबी के साथ मैं आसानी से निपट सकता हूं। उसका कोई ख़ौफ नहीं रह जाता। तो बड़ी सावधानी से इस समस्या को हम देखें। क्या है इच्छा? इच्छा की जड़ क्या है, उसकी शुरुआत कहां से है? ठीक है न? क्या इस बारे में हमारा संवाद हो सकता है?

हमारा सवाल है कि इच्छा की जड़ क्या है, क्या हम उस जड़ को देख सकते हैं और उसके साथ रह सकते हैं? आप समझ रहे हैं? यह नहीं कि यह गलत है या सही है, इच्छा का होना अच्छी बात है, या बिना इच्छा के मनुष्य क्या करेगा – इस तरह के सवाल नहीं।

प्रश्नः आपके सवाल का जवाब मेरे पास है। मैं सोचती हूं कि मां से अलग होना इच्छा की शुरुआत है।

कृ.ः मां से? बच्चे को अपनी मां से इच्छाएं मिलती हैं?

प्रश्नः नहीं, इच्छा अलग होने के कारण आती है।

कृ.ः मां से अलग होने के कारण? क्या ऐसा है? क्या यह सच है? हमें नहीं पता। बच्चों और मांओं को बीच में न लाएं। वह अलग सवाल है। हम उसे तब लेंगे जब ऐसा कोई सवाल उठेगा।

हमारा सवाल है : इच्छा की जड़ क्या है? आपने कोई ख़ूबसूरत चीज़ देखी, कोई सुंदर तस्वीर, कोई बढ़िया फर्नीचर या गहना। किसी दुकान में सजा हुआ। आपके भीतर क्या होता है? आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ें। आपकी नज़र शोकेस में सजे उस गहने पर गयी। एक प्रतिक्रिया उठी। ठीक? आप अंदर गये और दुकानदार को गहना दिखाने के लिए कहा। आपने उसे छुआ। आपमें कुछ सनसनाहट हुई। ठीक? पहले आपने देखा, आप अंदर गये, उंगलियों से उसको छुआ, तब सनसनाहट हुई। ठीक? देखना, स्पर्श और संवेदन। कृपया धीरे-धीरे आगे बढ़ें, आप इसे ख़ुद-ब-ख़ुद देख लेंगे। फिर विचार कल्पना करने लगा कि इस गहने में मैं कितनी ख़ूबसूरत लगूंगी, मेरे हाथ में या मेरे गले में या मेरे कानों में यह कितना खिलेगा। ठीक है न? तो उस क्षण इच्छा का जन्म हुआ। मैं कुछ स्पष्ट कर पा रहा हूं?

संवेदन का होना स्वाभाविक सी बात है - शोकेस में उस गहने को देखना, अंदर जाना, उसे छूना और संवेदन का उठना। इसके अगले क्षण विचार कूद पड़ता है, यह सब एक सेकेंड में हो जाता है, और विचार कहता है, ''मेरी उंगलियों पर यह कितनी खिलेगी। कितना अच्छा हो अगर यह

शानदार अंगूठी मेरे पास हो।'' उस लम्हा इच्छा का जन्म होता है। सही है न? पता नहीं आप यह समझ पा रहे हैं या नहीं?

इच्छा के भीतर यदि हम आहिस्ता-आहिस्ता, एक-एक कदम रखते हुए प्रवेश करें तो हम इच्छा को जन्म लेते हुए देख सकेंगे - देखना, छूना, सनसनी का होना। विचार कार को देखता है, उसको स्पर्श करता है, चारों तरफ घूमकर निहारता है, महसूस करता है, उसे खोलता है और तब, एक सनसनी। फिर विचार कहता है, ''मैं उस कार को लेना चाहूंगा, अंदर बैठना चाहूंगा, चलाना चाहूंगा।'' आप समझ रहे हैं? यह सारा कुछ एक सेकेंड में हो जाता है, जबकि हम अभी इसे अलग-अलग कर के देख रहे हैं।

इस सारी प्रक्रिया के बारे में जब आप सजग होते हैं - यानी कि देखना, छूना, और सनसनी, विचार आपको कल्पना में कार मैं बिठला देता है और आप कार चला रहे होते हैं। आप समझ रहे हैं न? उस क्षण जब विचार सनसनी के साथ दख़लंदाजी करता है इच्छा की उत्पत्ति होती है। समझ गये आप? क्या ऐसा नहीं होता? यह सब नहीं कहिये, क्या यह सही है, क्या यह सच्चाई है। यह सच्चाई है।

आपने कोई ब्लाउज़ या कोई स्कर्ट देखी, या कोई अच्छी शर्ट देखी, और एक सेकेंड में आप उस सारी प्रक्रिया से गुजर गये। पर जब आप इसे धीमी गति में लाते हैं, किसी फिल्म की तरह, एक-एक दृश्य, तो आप उसकी पूरी गतिविधि को देख लेते हैं - देखना, छूना, सनसनी, छवि के साथ विचार का आना, तब इच्छा का जन्म लेना। ठीक? क्या बात कुछ साफ हुई? मेरे कहने पर मत चलिए, यह मत बोलिए, ''आपको क्या हक है मुझे यह सब बताने का?'' यह सच्चाई है। अब हमें यह पता लगाना है कि विचार ऐसा क्यों कर रहा है। विचार किसी संवेदन या सनसनी को अपनी

गिरफ्त में क्यों ले लेता है और उसे एक प्रतिमा में तब्दील कर देता है? मेरी बात आप समझ रहे हैं? क्यों? अब आप देखिए कि विचार ऐसा क्यों करता है।

प्रश्नः याद्दाश्त में फंसकर उसे अपने को दोहराना अच्छा लगता है।

कृ.ः नहीं। क्या यह आदत नहीं है? इस गति, हलचल का हमें कुछ पता नहीं है, कुछ होश नहीं है। मेरी निगाह तत्क्षण कहीं जाती है तथा विचार और संवेदन के बीच कोई अंतराल, अवकाश नहीं रह जाता। मेरी बात आप समझ रहे हैं? मुझे उम्मीद है कि आप समझ रहे हैं। क्या मैं बेवकूफी की बात कर रहा हूं या इसके कुछ मायने भी हैं? आप ही यह तय करें; मैं जो कुछ बोल रहा हूं उस पर संदेह करें। अतः इच्छा से ज्यादा विचार हावी है, बलशाली है। ठीक? पता नहीं आप यह बात देख पा रहे हैं या नहीं? यानी, विचार संवेदन को ढाल रहा है। बीती रात आप रतिक्रिया में गये लेकिन अभी भी विचार अपनी छवियों, चित्रों, चाहनाओं के साथ सक्रिय है।

इस तरह इच्छा और विचार साथ-साथ चलते हैं। ठीक है न? आप समझ रहे हैं? क्या ऐसा है? या इच्छा बिलकुल ही विचार से भिन्न है? या दोनों ही दो घोड़ों की तरह हमेशा साथ-साथ चलते हैं। जब दोनों दौड़ रहे होते हैं तो विचार कहता है, ''मुझे इस पर लगाम कसनी होगी''। समझ पा रहे हैं न आप?

इस तरह जब मैं देखने, छूने, संवेदन के होने तथा विचार द्वारा संवेदन को पकड़ लेने और फिर उसे एक छवि में तब्दील कर देने की पूरी प्रक्रिया के बारे में सजग होता हूं तो मुझे पता चलता है कि इच्छा का किस क्षण जन्म होता है। तब क्या संवेदन, और विचार द्वारा संवेदन को पकड़ लेने के

क्षण के बीच एक अंतराल, एक अवकाश, एक गैप हो सकता है? आप समझ रहे हैं न मेरी बात? आप एक कार को देखते हैं, बहुत बढ़िया मॉडल, बहुत ख़ूबसूरत पॉलिश की हुई, बारीक रेखाएं, ऐरोडायनामिक डिज़ाइन। आप उसके नज़दीक जाते हैं, चारों तरफ घूमकर देखते हैं, छूते हैं, कुछ संवेदना होती है। आप वहीं पर क्यों नहीं रुक जाते? विचार इतनी जल्दी क्यों बीच में आ जाता है? इस सारी प्रक्रिया के बारे में अगर आप सजग हैं तो आप बहुत साफ-साफ देख लेंगे कि विचार ने कब आना शुरू कर दिया। ठीक है न? जब आप इतनी नज़दीकी से देखेंगे तो विचार आने से झिझकेगा। समझ रहे हैं न आप?

जब इस सारी गतिविधि के बारे में आप ध्यान देते हैं तो वहां किसी भी तरह के दबाव-नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। आप समझ रहे हैं न? क्योंकि जब मैं अपनी किसी इच्छा को दबाता हूं तो दबाने वाला खुद एक दूसरी इच्छा का रूप होता है। इस प्रकार एक इच्छा का दूसरी इच्छा के साथ संघर्ष होने लगता है। लेकिन जब हम इच्छा की पूरी-की-पूरी गति को समझ लेते हैं तो एक प्रकार का अनुशासन आता है जो नियंत्रण या दबाव नहीं होता। जबकि सजगता का, इस सारी प्रक्रिया के प्रति अवधान का, अपना एक अनुशासन होता है। अरे, मैं खुद से तो नहीं बात किये जा रहा? नहीं, आपने यह सब करके नहीं देखा है। यह सारा कुछ आपके लिए नया है।

प्रश्नः क्या मैं विचार के बारे में एक सवाल पूछ सकती हूं? जब हम इस टेंट से बाहर निकलें तो हम ऐसा क्या करें कि विचारों की शुरुआत ही न हो?

कृ.ः उस दिन मैंने यह सारा कुछ स्पष्ट किया था। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां विचार की ज़रूरत है, नहीं तो मैं और

आप अंग्रेजी में बात कैसे कर पाएंगे। अपने घर पहुंचने के लिए, अपने काम-काज के वास्ते, अपने हुनर के लिए विचार ज़रूरी है। दुनिया की आश्चर्यजनक चीज़ों को विचार ने ही बनाया है - कैथीड्रल, ऐटम बम, अद्‌भुत पनडुब्बियां आदि। कैथीड्रल के भीतर जो कुछ है, सारे परिधान, और सारी पोशाकें, उस सबको भी विचार ने रचा है। और विचार ने युद्धों को भी रचा है, यानी मेरा देश और आपका देश, मेरी जाति और आपकी जाति।

तो हम कुल मिलाकर यही बात कर रहे हैं कि कहीं-कहीं जगहों पर विचार की ज़रूरत है और बाकी कहीं उसकी ज़रूरत नहीं है। विचार की कहां ज़रूरत नहीं है, यह जानने के लिए बहुत अधिक अवलोकन, बहुत अधिक अवधान और देखभाल की आवश्यकता है। लेकिन हम सब इतने अधीर हैं कि वहां तक तुरंत पहुंच जाना चाहते हैं, जैसे सिरदर्द हुआ नहीं कि झटपट कोई टिकिया ले ली। हम यह कभी नहीं पता लगाते कि सिरदर्द का कारण क्या है। आप समझ रहे हैं न? तो इच्छा की उत्पत्ति, उसके आरंभ को जब हम साफ-साफ देख-समझ लेते हैं तो यह समझ अपनी एक व्यवस्था लाती है, और तब अनुशासन, इच्छा आदि की ज़रूरत नहीं रह जाती। ठीक है?

क्या मैं कुछ स्पष्ट कर पाया?

प्रश्नः कोई चीज़ खरीदने की इच्छा और सत्य को ढूंढ़ने की इच्छा, इन दोनों में क्या फर्क है?

कृ.ः नीले सूट, नीली शर्ट या नीले ब्लाउज़ की इच्छा, तथा सत्य को पाने की इच्छा, दोनों में ज़रा भी फर्क नहीं है क्योंकि दोनों ही इच्छाएं हैं। मेरी इच्छा एक ख़ूबसूरत कार पाने की है और आपकी इच्छा स्वर्ग पाने की - दोनों में क्या फर्क है? हम इच्छा को, न कि उसकी विषय वस्तुओं को,

समझने की कोशिश कर रहे हैं। आपकी इच्छा ईश्वर के पास बैठने की हो सकती है और मेरी इच्छा एक सुंदर बगीचे की। लेकिन हम दोनों ही इच्छा कर रहे हैं।

हमें यहां इच्छा को समझना है न कि आपके स्वर्ग को या मेरे बगीचे को। इच्छा को अगर मैं समझ लेता हूं तो इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप स्वर्ग की कामना कर रहे हैं या कुछ और की।

ब्रॉकवुड पार्क, 30 अगस्त 1983 — प्रथम प्रश्नोत्तर सभा

अनुवाद : मुकेश

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेषन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेषन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

खंड –2

सह्याद्री गैदरिंग–2008 : मानव–प्रकृति संबंध

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया का वार्षिक सम्मेलन सह्याद्री स्कूल, पुणे में 18 से 22 नवंबर, 2008 के बीच संपन्न हुआ। पहाड़ी के ऊपर रमणीक हरीतिमा के मध्य स्थित विद्यालय परिसर तथा तराई में एक ओर खेत–खलिहान–गांव और दूसरी तरफ भीमा नदी का जल विस्तार – प्रकृति की इस अनुपम छटा के बीच करीब 250 सहभागियों ने ''मानव–प्रकृति संबंध'' का अन्वेषण किया। हर दिन की शुरुआत मौन सत्र से होती थी। गैदरिंग के पहले दिन सुबह कृष्णमूर्ति और डा. एंडरसन के बीच सैनडिएगा में 22 जनवरी 1974 को हुए संवाद का वीडियो दिखाया गया। इस संवाद में संबंध की गहन जांच–पड़ताल में उतरते हुए यह बात रेखांकित हुई कि असली समस्या साफ–साफ देखने की है; स्पष्ट अवलोकन स्वयं अपनी क्रियाशीलता लाता है। इसके पश्चात पी. कृष्णा ने अपने संबोधन में कहा कि मनुष्य के भीतर प्रकृति प्रदत्त क्षमताएं हैं, जैसे, विचारणा, कल्पना, अनुमान, संवेदना एवं बोध, जिनका गलत प्रयोग ही अहम या ''मैं'' को जन्म देता है। यदि हम अहम विहीन जीवन जी सकें तो संबंधों की विकृतियों का अंत हो सकता है।

दूसरे दिन एस.पी. कंदास्वामी ने अपने विचार रखते हुए कहा कि प्रकृति से संबंधित न होना मानवीय समस्याओं का मूल कारण है। शाम को इसी विषय पर ओहाय में 18 मई 1985 को हुई जे. कृष्णमूर्ति की वार्ता का वीडियो प्रदर्शित किया गया जिसमें कृष्णमूर्ति ने स्पष्ट किया कि सभी इंद्रियों की समग्र जाग्रति से उत्पन्न हुए अवधान में ''मैं'' का केंद्र मिट जाता है जो कि सौंदर्य एवं प्रेम की अवस्था है और वहीं सच्चा संबंध संभव हो पाता है।

आखिरी दिन इस विषय पर परिचर्चा हुई कि प्रकृति के साथ हमारे संबंध को कैसे पुनर्जीवित किया जाए। परिचर्चा में प्रो. कृष्णनाथ ने हिस्सा लेते हुए कहा कि प्रकृति के प्रति असीम कृतज्ञता एवं आभार का भाव आवश्यक है। परिचर्चा में पी. रमेश और डा. गजानन राव ने भी हिस्सा लिया। किशोर खैरनार ने संचालन किया। समापन संबोधन में राजेश दलाल ने कहा कि यदि हम आसानी से व्याख्याओं एवं परिभाषाओं से संतुष्ट न होकर वास्तविकता के सीधे संपर्क में हों तभी हम सार्थक अन्वेषण कर

सकते हैं। 1983 में सानेन में दी गयी कृष्णमूर्ति की पांचवी वार्ता के साथ सम्मेलन का समापन हुआ। इस वार्ता में उन्होंने मानव मस्तिष्क की कोशिकाओं में तत्काल रूपांतरण की आवश्यकता का प्रश्न उठाते हुए कहा कि यदि ऐसा न हुआ तो कम्प्यूटर, सतही जीवन शैली, उन्माद एवं क्रूरता के वर्चस्व से पूरा मानवीय जीवन संकट में पड़ जाएगा। –डा. चंद्रशेखर नायक

हिंदी रिट्रीट : स्वयं को शिक्षित करना

कृष्णमूर्ति अध्ययन केंद्र, वाराणसी में 12 से 14 दिसंबर, 2008 के बीच हिंदी में अध्ययन अवकाश का आयोजन हुआ जिसमें 35 सहभागियों ने हिस्सा लिया। विषय था : स्वयं को शिक्षित करना। गंगा नदी के तट पर राजघाट के प्रकृति संपन्न एकांत वातावरण में मौन के साथ प्रत्येक दिन की शुरुआत होती थी। इसके पश्चात दिन के अलग-अलग समय में संवाद, परिचर्चा एवं वीडियो शो का आयोजन होता था। सहभागियों को तीन संवाद समूहों में बांटा गया था : 'अवलोकन', 'श्रवण' एवं 'अवधान'। परिसंवाद में उठे कुछ प्रश्न इस प्रकार थेः यदि हमें स्वयं को शिक्षित करना हो तो शुरुआत कहां से हो? क्या हम सजगता की, सम्यक रूप से देखने एवं सुनने की आवश्यकता अपने भीतर सचमुच महसूस करते हैं या यह आवश्यकता हमने कहीं से पढ़-सुनकर कृत्रिम रूप से निर्मित कर ली है? क्या हम अन्वेषण, खोजबीन करने के लिए स्वतंत्र हैं? यदि हम आरंभ में ही स्वतंत्र नहीं हैं तो क्या हम कुछ भी अन्वेषण कर पाएंगे?

नये प्रकाशन

सोच क्या है? कृष्णमूर्ति की पुस्तक *नेटवर्क ऑफ थॉट* का यह हिंदी अनुवाद है। 1981 में सानेन तथा एम्स्टर्डम में दी गयी इन वार्ताओं में कृष्णमूर्ति मनुष्य मन की संस्कारबद्धता को कम्प्यूटर की प्रोग्रामिंग जैसा बताते हैं। हर व्यक्ति अपने विशिष्ट नियोजन यानी 'प्रोग्राम' के मुताबिक सोचता है, हर कोई अपने खास तरह के विचार के जाल में फंसा है। वास्तविक स्वतंत्रता इस नियोजन से मुक्त होने में है।

राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का मूल्य 125 रुपये है।

हिंदी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

1. ज्ञात से मुक्ति	रु. 100.00
2. ध्यान	रु. 40.00
3. हिंसा से परे	रु. 90.00
4. गरुड़ की उड़ान	रु. 70.00
5. संस्कृति का प्रष्न	रु. 50.00
6. षिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य	रु. 60.00
7. षिक्षा संवाद	रु. 75.00
8. स्कूलों के नाम पत्र	रु. 60.00
9. स्कूलों को पत्र, भाग–2	रु. 40.00
10. आमूल क्रांति की आवष्यकता	रु. 60.00
11. सुखी वही जो कुछ नहीं है	रु. 25.00
12. वाषिंगटन वार्ताएँ	रु. 25.00
13. अंतिम वार्ताएँ	रु. 70.00
14. सत्य एक पथहीन भूमि है	रु. 10.00
15. मृत्यु और उसके बाद	रु. 40.00
16. जीवन भाष्य–1	रु. 70.00
17. जीवन भाष्य–2	रु. 70.00
18. जीवन भाष्य–3	रु. 80.00
19. ईश्वर क्या है?	रु. 125.00
20. सोच क्या है?	रु. 125.00
21. ध्यान (नया परिवर्धित संस्करण)	रु. 125.00
22. शिक्षा क्या है?	रु. 175.00
23. आपको अपने जीवन में क्या करना है?	रु. 175.00
24. प्रथम और अंतिम मुक्ति (पेपरबैक)	रु. 175.00
25. प्रथम और अंतिम मुक्ति (हिंदी–अंग्रेजी द्विभाषी संस्करण)	रु. 500.00

जे. कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्

कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी–221001

ईमेलः kcentrevns@gmail.com फोनः 0542–2441289, 2440453

स्वामी 'कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस–1/208 के–1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ. प्र.) से प्रकाषित संपादक : कृष्णनाथ